संतकाव्य की प्रासंगिकता: कबीर के संदर्भ में

डॉ० रवीन्द्रनाथ मिश्र

संतकाव्य मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की उपज है। यह कविता का आंदोलन न होकर अखिल भारतीय समग्र सांस्कृतिक परंपरा का आंदोलन है। जो कि तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था के समानांतर उठ खड़ा हुआ था, जिसने कि सम्पूर्ण मानवजाति को झकझोर कर रख दिया। मैनेजर पाण्डेय का मत है कि ''भक्ति आंदोलन के साथ भारतीय समाज, संस्कृति और साहित्य के विकास की नई अवस्था का आरंभ होता है। भक्ति आंदोलन और उसके साहित्य में अभिव्यक्त अनुभूति, विचारधारा और सांस्कृति चेतना का जितना संबंध भारतीय संस्कृति और साहित्य की प्राचीन परंपराओं से है, उससे अधिक अपने युग के समाज और जनसंस्कृति से है। उसमें सामाजिक जीवन की तरह-तरह की विसंगतियों की पहचान है।''

भक्ति आंदोलन ऐश्वर्य और भोग का आंदोलन न होकर त्याग, तपस्या एवं पीड़ित जन को एकीकृत करने के प्रति समर्पित था। जो घट-घट में राम को ढूँढ़कर सबको समान मानता था। जहाँ एक तरफ हिंसा, लोभ, क्रोध, छल, प्रपंच, अत्याचार, दुराचार और निरंकुश राजतंत्र की भयंकरता की तुरही बज रही थी, वहीं पर पवित्रात्मा परोपकारी एवं सदाचारी संत चित्त की शुद्धता पर बल देते हुए मानुष प्रेम को बैकुण्ठी बताकर जनता को मानवतावाद का संदेश दे रहे थे। वेदशास्त्र की बातों को नकारते हुए कागज की लेखी पर विश्वास न करके आंखों की देखी को सही बता रहे थे। जबकि इसके पूर्व शास्त्र वचन अकाट्य माने जाते थे और वेद को न मानना यानी भगवान को चुनौती देना था। इस प्रकार संत एवं भक्त कवि अपने-अपने ढंग से राजनीतिक सत्ता को चुनौती दे रहे थे।

संतकाव्य की विशेषता यह है कि इसमें शास्त्रीयता का विरोध एवं लोकचेतना की क्रान्तिकारी भावना निहित है। जो कि अनुभूति और अभिव्यक्ति के दोनों धरातलों पर हुई। जिसका संबंध तत्कालीन जीवन शैली और जीवन तथ्यों से हुआ और इसका प्रभाव दूरगामी रहा।

किसी कवि के साहित्य की प्रासंगिकता का अर्थ वर्तमान संदर्भ में उसकी उपादेयता का विवेचन है। इसीलिए कबीर-साहित्य की प्रासंगिकता से तात्पर्य आज के समाज के लिए उनके साहित्य की समीचीनता से है। संतकाव्य में सामंती समाज-व्यवस्था और उसकी विचारधारा के विरुद्ध विद्रोह के साथ-साथ समता-मूलक समाज व्यवस्था की आकांक्षा, जनजीवन के यथार्थ और जनसंस्कृति के सौंदर्य की अभिव्यक्ति भी है। संत और भक्त कवि लोकमंगल की भावना से प्रेरित लोकमंगल की साधना के कवि थे। उनके अनुभव और उनकी काव्य-साधना का क्षेत्र लोकजीवन ही था।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या पन्द्रहवीं शताब्दी का रहस्यवादी संत बीसवीं शताब्दी के इस अतियकार्थवादी और भौतिकवादी वैज्ञानिक चरण के लिए उपयोगी है? क्या 'मसि कागद

छुयौ नहिं, कलम गह्यौ नहिं हाथ की घोषणा करने वाला एक वाणी विधायक आज के अतिबुद्धिवादी विद्वत समाज के लिए कोई संदेश छोड़ गया है? आखिर क्या कारण है कि उत्तर आधुनिकता के इस दौर में जबकि हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं, अचानक हमें संत एवं भक्त कवि याद आने लगे हैं? क्योंकि आज का जीवन कबीर, जायसी, सूर, तुलसी और मीरा का जीवन नहीं है। दूसरे आज की कविता अध्यात्म, धर्म और सम्प्रदाय से प्रायः नहीं जुड़ी है; प्रत्युत सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रभावों से ग्रस्त है और एक तरह से भावुकता मुक्त भी। आज तो 'मैं तो कूता राम का,' 'एक हूतो सो गयो श्याम संग', कामहि नारि पियारि जिमि', मोरे तो गिरधर गोपाल', वाली बात भी नहीं है, क्योंकि आधुनिक मानव जीवन-दृष्टि का निर्माण विज्ञान के नवीन अनुसंधानों के आलोक में हो रहा है। वह प्रत्येक समस्या का समाधान बौद्धिकता के स्तर पर ढूँढ़ता है। यह संसार उसके लिए पानी केरा बुलबुला और कागज की पुड़िया नहीं वरन् एक वास्तविकता है। वह जानता है कि मनुष्य की सामाजिक, आर्थिक स्थिति उसके पूर्व जन्मों के कर्मों का परिणाम नहीं वरन् इसके मूल में अधिकार एवं शक्ति सम्पन्न उच्चवर्गीय मानवों का स्वार्थभाव है।

आज के मानव के लिए धर्म, दर्शन, कला और नैतिकता के आदर्श उसकी काम भावना एवं अहं के द्वन्द्व उसकी मानसिक वृत्तियों के उदात्तीकरण के परिणाम हैं। मार्क्स, फ्रायड एवं अन्य पाश्चात्य विचारकों के प्रभाव के कारण पाप, पुण्य और नैतिकता आदि बातें अप्रभावित हो रही हैं। सत्य, न्याय, ईमानदारी, निष्ठा और कर्त्तव्य परायणता जैसे मानवीय मूल्य समय के साथ बदल रहे हैं। समकालीन कवि मणिमधुकर लिखते हैं कि–

श्रद्धा, सम्मान और प्रेरणा जैसे शब्दों को,
पान की पीक के साथ थूकता हूँ मैं।

दरअसल भौतिक एवं पूंजीवादी व्यवस्था के साथ-साथ यांत्रिक शक्ति का विकास होता गया। यंत्रों के बीच रहते हुए हम यांत्रिक हो गए। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारी संवेदनाएं भी मरने लगी। मनुष्य अकेला पड़ता जा रहा है। भीड़ तो बढ़ रही है, लेकिन समुदाय नहीं बन पा रहा है। मोहन राकेश के आधे-अधूरे की तरह हम भी पूरे नहीं हो पा रहे हैं। संशय की रात और अंधेरे में हम भटक रहे हैं। युग की भयावहता बढ़ती जा रही है। पहले व्यष्टि से समष्टि का निर्माण हुआ था। आज हम समष्टि से व्यष्टि की तरफ अग्रसर हो रहे हैं। भीड़ में खड़ा आदमी अपने को अकेला पा रहा है। मनुष्यत्व एवं मातृत्व समाप्त होता जा रहा है। पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्ते बिखर रहे हैं। मनुष्य कुंठा, संत्रास, अविश्वास, सन्देह एवं अजनबीपन की स्थिति में जी रहा है। इससे मुक्ति पाने के लिए हास्य संस्थाओं का गठन हो रहा है। संचार माध्यमों के द्वारा जो कुछ परोसा जा रहा है, उससे हमारी परंपरागत जीवन शैली तो नष्ट हो ही रही है साथ ही अवांछित वस्तुओं के संग्रह की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। इससे संतोष के स्थान पर असंतोष बढ़ता जा रहा है। प्रतिदिन नई-नई समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। जयशंकर प्रसाद के शब्दों में–

यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि
द्वयता में लगी निरंतर ही वर्णों की करती रहे वृष्टि,

अनजान समस्याएं गढ़ती रचती हो अपनी ही विनष्टि,
कोलाहल कलह अनंत चले, एकता नष्ट हो बढ़े भेद।।

उपर्युक्त स्थितियों में आज हमें संत एवं भक्त कवि याद आ रहे हैं। इनकी रचनाओं में हमें जीवन का यथार्थ, पारिवारिक संवेदना, मूल्यों और आदर्शों की स्थापना एवं जीवन-जगत् की वे तमाम बातें पायी जाती हैं, जिन्हें कि हम रोजमर्रा के जीवन में जीते हैं। पांच छः सौ वर्षों के बाद भी वही ताजापन विद्यमान है। अपनी ताजगी के कारण इन संतों और भक्तों की रचनाएं और भी जवान होती जा रही है। आखिरकार जवानी का लक्षण उसका नयापन होना ही तो है।

नवल किशोर का कथन है कि ''प्रासंगिकता मूलक आलोचना ने तुलसी के साथ कबीर को खड़ा किया। तदनुसार तुसी शास्त्रानुग सगुण भक्ति परंपरा के अभिजन कवि ठहराए गए और कबीर लोकमार्गी निर्गुण परंपरा के जन-कवि।''

कबीर ऐसे संत-शिरोमणि थे, जिन्होंने जीवन और जगत की वास्तविकता को पहचाना था और साथ ही ब्रह्म के तत्व को हृदय में धारण कर लिया था। इसीलिए तो कहते हैं कि–

'कबीर कूता राम का, मूतिया मेरा नाउं।
गलै राम की जेवड़ी, जित खंचै तित जाउं।।

राम से ज्यादा उनका भला और कौन कर सकता है, इसलिए अपने को राम के सुपुर्द कर पूरी तरह निश्चिंत हो जाओ, पूरा मन लगाकर एवं पूरी तरह निडर होकर अपना काम करो। ऐसा उनका मानना था। 'तुम दाता, तुम भंजना मेरी करो सम्हार' के अगाध विश्वास पर कबीर ने बड़े से बड़े शत्रु के आगे छाती ठोंककर कह दिया कि जाको राखौ साइयां, मार न सकिहैं कोय। हम सब मांहि, सकल हम मांहीं, हम थैं और दूसरा नाहीं। कपट की भगति करै, जिन कोई, अंत की बेर बहुत दुःख होई।।

आज ईश्वर के प्रति अगाध विश्वास की बात पर प्रश्न चिन्ह तो जरूर लग गया है लेकिन क्या गांधी जी के पास कबीर की पूंजी नहीं थी। गांधी जी ने चरखा, करघा, सत्य अहिंसा, सभी के लिए धर्माधिकार की बात कबीर से ही तो प्राप्त की थी। संत कबीर और महात्मागांधी में कई दृष्टियों से विचारों की एक रूपता मिलती है। जहां कबीर ने साखी में यह कहा कि मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा। तेरा तुझको सौंपता क्या लागे मेरा। वहीं गांधी जी ने कहा कि 'ईश्वर पूर्ण आत्म-समर्पण के बिना संतुष्ट नहीं हो सकता। माला फेरे मन मुखी, ताते कछू न होइ। मन माला कौं फेरता, घर उजियारा होइ' कबीर ने कहा तो गांधी ने यह लिखा कि प्रार्थना या भजन जीभ से नहीं, हृदय से होता है। कबीरा सोई पीर है जो जानै पर पीर। पीर पराई जान रे की बात तो गांधी जी ने भी की।

असल में कबीर के उस रूप को मुखर नहीं किया गया जिसमें वे कहते हैं कि–

कबिरा खड़ा बजार में, मानै सबकी खैर,
ना काहूँ से दोस्ती, ना काहूँ से बैर।।

कबीर की दयालुता के स्थान पर उनके विद्रोही स्वभाव को अधिक उभारा गया।

कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।

जो घर फूँके आपना, सो चले हमारे साथ।।

हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या?

रहै आजाद या जग में, हमन दुनिया से यारी क्या? कबीर ने जब अपने आसपास की सामाजिक बुराइयों और विषमताओं को अपनी आंखों से देखा और समझा तो उन्होंने उस पर सीधे प्रहार किया। उनका जीवन हिन्दू मुस्लिम की मिली-जुली संस्कृति के बीच बीता इसलिए उन्होंने दोनों की सामाजिक विसंगतियों पर बिना किसी भेद-भाव के कटु आलोचना की। उस समय की सामाजिक दशा अवदशा का कारण हमारी परंपरागत मान्यताएं एवं रूढ़ियाँ थीं, लेकिन आज की स्थिति, उससे कुछ मानो में भिन्न है। अब तो राजनीतिक मोहरें मंडल-कमण्डल और आतंकवाद के इर्द गिर्द बिछाई जा रही हैं तथा इसके अतिरिक्त अन्य तमाम हथकंडे भी अपनाए जा रहे हैं। परिणाम स्वरुप सामाजिक जीवन असुरक्षित होता जा रहा है। इस विषम परिस्थिति में संतों एवं भक्तों की वाणी याद आ रही है। जिन्होंने कि मन की पवित्रता, नैतिक मूल्यों की स्थापना और समदर्शिता की भावना पर बल दिया।

समदृष्टि सतगुरु किया दीया अविचल ज्ञान।

जहँ देखो तहँ एक हीदूजा नाहीं आन।।

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाके हृदय सांच हैं, ताके हृदय आप।।

डॉ० बलदेव बंशी का विचार है कि ''कबीर राजनीति सत्ता व्यवस्था को निरंकुश नहीं अध्यात्म में बांधना चाहते थे। अपने समय के शासक सिकन्दर लोदी की सत्ता को कबीर ने आध्यात्मिक और नैतिकता के इसी मर्यादामंच से ललकारा था। सत्ता की चूलें हिल गई थीं। आज भी सत्ता व्यवस्था राजनीति, निरंकुश, स्वार्थी अनैतिक और भ्रष्ट हो रही है। हिंदू-मुसलमान (अब तो और भी कई सम्प्रदाओं, जैसे सिक्खों, इसाइयों आदि) को वोटों की राजनीति, सत्ताशक्ति और गद्दी के लिए क्या-क्या घृणित हथकंडे नहीं अपना रही। कबीर ऐसी अराजक, अमानवीय प्रवृत्ति पर जन समाज को सजग करके अंकुश लगाने को प्रेरित करते हैं।''

प्रत्येक परिवर्तन अपने समय के संदर्भ में होता है और उसी में सामाजिक और राजनीतिक अतिक्रमण की संभावना रहती है। इतिहास गवाह है कि हमारा देश भी अनेक विषम परिस्थितियों के दौर से गुजरा है और गुजर रहा है। कबीर का युग भी अनिश्चितताओं का युग था, जब मानव समाज अपनी लक्ष्य दृष्टि खो चुका था। वह निराशा, कुंठा, विषाद, विग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध आदि कई विकारों से ग्रस्त था। जिसका स्वरुप आज भी हम देख रहे हैं। तब कबीर ने अपने अनुभूत सत्यों के आधार पर जो कुछ कहा उसे अनुभव की धार पर परखकर डंके की चोप पर कहा, नहीं तो भला जिस व्यक्ति पर भरे-पूरे परिवार की जिम्मेदारी हो और जिसके परिवार में पूंजी के नाम पर श्रम के सिवा और कुछ न हो। वह भला किस आधार पर समाज के सबसे शक्तिशाली लोगों से दुश्मनी मोल लेता।

कबीर का प्रबल आधार था उनकी असीम, गहरी एवं पूरे विश्वास की भक्ति भावना जिसमें किसी तरह के शक सुबहा की गुंजाइश नहीं थी। कबीर ने अपने को पूरी तरह से अपने

राम को सौंप दिया था। यही कारण है कि इनके द्वारा ओढ़कर रखी गई ज्यों-की-त्यों चादर आज भी जैसी की तैसी बनी हुई है। डॉ० श्यामनंदन किशोर का कथन है कि "कबीर व्यावहारिक रहस्यवादी थे। उनका युगबोध और आत्मबोध दोनों अत्यन्त सूक्ष्म तत्वपूर्ण और विस्तृत था। कबीर का साहित्य सत्य और शिव का समन्वय है। उसका सुंदर उसके अक्खड़पन में विलीन हो गया है। दो टूक कहने वाले इस मोहमुक्त संन्यासी ने बाहर भीतर को एक रूप देखा कबीर का उपदेश केवल दूसरों के लिए नहीं, उनके अपने जीवन से छनकर निकली हुई अनुभूति है। उनके नैतिक मूल्य बाहर से ओढ़े हुए लबादे नहीं उनके जीवन के निष्कर्ष हैं।"

भारतीय जीवन दर्शन मूलतः कर्मप्रधान रहा है। कबीर कर्मवाद के साक्ष्य हैं। राम के नाम का ताना-बाना बुनते हुए कर्म को सर्वोच्च प्रधानता दी। राम-नाम की चादर बुनकर बाजार में बेचते। कबीर ने 'संतोष धन' को सबसे बड़ा धन माना है। उन्होंने समाज के लिए पेट की सीमा बांध दी है। जो कि आज के जीवन के लिए सबसे बड़ा आदर्श हो सकता है, क्योंकि हम घर जोड़ने की माया में इतने व्यस्त एवं संकीर्ण विचारों के हो गए हैं कि बहुत कुछ प्राप्त होने के बाद भी अभाव की अनुभूति हो रही है। कबीर की निम्न पंक्तियां रिक्त जीवन को संबल प्रदान कर सकती है।

साँईं इतना दीजिए जामे कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय।।
संत न बांधे गाठड़ी पेट समाता लेइ।
साईं सू सनमुष रहै, जहाँ मांगै तहाँ देई।।

कबीर की सारी सोच और चिंताओं का केन्द्र जीवन रहा है। उनका रास्ता कर्म, सच्चरित्रता, नैतिकता, खरापन, संवेदनशीलता का है। इसे ही वे सहज योग की गरिमा देते हैं।

पिछले कई वर्षों से सार्वजनिक जीवन में अविश्वास, अपराध, ढोंग टूटन, हिंसा, सत्ता प्राप्ति की लिप्सा, धनसंचय की प्रवृत्ति, घोटाला, हवाला, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद जान-पहचान, सम्प्रदायवाद, भाषा-जाति एवं प्रान्तवाद का बोलबाला बढ़ता गया है। त्याग, विनम्रता, सेवाभाव, निष्कामभाव, सौहार्द, संतोष और सद्भाव नदारद होते जा रहे हैं। जयशंकर प्रसाद की यह पंक्ति अधिक चरितार्थ हो रही है–

सौंदर्य जलधि से भर लाये, केवल तुम अपना गरल पात्र

आधुनिक भारत के सर्वश्रेष्ठ कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रहस्यवादी कविताओं पर कबीर का प्रभाव स्पष्ट है। इसी तरह हिंदी के रहस्यवादी कवियों में प्रसाद, निराला, वर्मा और डॉ० राम कुमार वर्मा की कविताओं पर उनका प्रभाव है। छायावादोत्तर रचनाकारों में मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, रघुवीर सहाय सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, राजकमल चौधरी और धूमिल आदि की रचनाओं में कबीरी प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। सामाजिक धरातल पर प्रगतिवादी एवं व्यंग्य लेखकों और कवियों ने भी कबीर स्वभाव का अनुकरण किया है। कबीर की निर्भीकता, दृढ़ता, मस्ती, फक्कड़पन, विवेकशीलता, यथार्थ दर्शिता, और चारित्रिक निर्मलता आदि की विशेषताएं आज के कई कवियों और लेखकों में पायी जाती है।

कबीर की प्रासंगिकता का प्रश्न व्यापक एवं बहुआयामी है। यह समसामयिक सार्थकता

तक ही समाप्त होने वाला नहीं है। क्योंकि आज जिस प्रकार से सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का गठन हो रहा है, उसमें कबीर एवं संत साहित्य की प्रासंगिकता बनी रहेगी। सामाजिक विषमता की कटुता बढ़ती ही जा रही है और राजनीति सत्तालोलुप एवं स्वार्थी हो गई है। कबीर पहले इंसान हैं जिन्होंने विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों और वर्णों को नकारकर ऐसे समाज की स्थापना का प्रयास किया, जिसमें धर्म, सम्प्रदाय, ऊँच-नीच के भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं है। पीड़ित, शोषित, अपमानित, जनसमाज के दुःख से जितना सरोकार कबीर का रहा है उतना भक्तिकाल के किसी अन्य कवि का नहीं। इनका सबसे बड़ा योगदान शोषित, पीड़ित, दलित अपमानित मानवजाति में सम्मान की भावना जागृत करना रहा है। अपने अस्तित्व की रक्षा, सामाजिक न्याय और सम्मान की लड़ाई में हमें आज भी कबीर का नेतृत्व प्रदान है। इनकी मध्ययुगीन परिवेशगत विसंगतियों के प्रति विद्रोहात्मक एवं यथार्थपरक दृष्टि, निर्भीक ओजस्वी स्वर, पारदर्शी चिंतन, साम्यभाव, नैतिक मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का विचार, धर्म-कर्म की समन्वय भावना और लोक भाषा आदि के गुण आधुनिक साहित्य की संवेदना एवं परिस्थितियों के निकट प्रतीत हो रही हैं। श्रेष्ठ कवि त्रिकालदर्शी होता है और वह जितना अधिक वर्तमान में जीता है, उससे कहीं अधिक भविष्य में। इस संदर्भ में कबीर की प्रासंगिकता का सवाल बना ही रहेगा। क्योंकि उन्होंने जिन मूल्यों के लिए संघर्ष किया, उनके समाधान का कोई सही उपाय नहीं ढूँढा गया।

रीडर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय
गोवा-403206